



आधुनिक भारत में आदिवासी महिलाओं में लैंगिक असमानता: चुनौतियों एवं सशक्तिकरण की संभावनाओं का अध्ययन”

Savita Viswakarma

Research Scholar, Kalinga University

Dr. Manoj Methew P

Supervisor, Kalinga University

सार

प्रस्तुत अध्ययन “आधुनिक भारत में आदिवासी महिलाओं के बीच लैंगिक असमानता का अध्ययन: चुनौतियाँ और सशक्तिकरण की रणनीतियाँ” का उद्देश्य आदिवासी महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं स्वास्थ्य संबंधी स्थिति का विश्लेषण करना है। अध्ययन में उन सामाजिक, सांस्कृतिक और संरचनात्मक कारकों पर विशेष ध्यान दिया गया है, जो आदिवासी महिलाओं के बीच लैंगिक असमानता को बनाए रखते हैं तथा उनके सशक्तिकरण को प्रभावित करते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज में महिलाओं की आर्थिक एवं पारिवारिक भूमिका महत्वपूर्ण होने के बावजूद उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, संपत्ति अधिकार तथा निर्णय-निर्माण में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। गरीबी, अशिक्षा, परंपरागत लैंगिक भूमिकाएँ, सीमित संसाधन और सरकारी योजनाओं तक अपर्याप्त पहुँच उनकी स्थिति को प्रभावित करते हैं। साथ ही, शिक्षा के विस्तार, स्वयं सहायता समूहों, सरकारी योजनाओं तथा जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक भागीदारी में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। अध्ययन निष्कर्षतः रेखांकित करता है कि आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, आर्थिक अवसरों का विस्तार, कौशल विकास, संपत्ति अधिकारों की सुनिश्चितता और सामाजिक जागरूकता आवश्यक हैं। ऐसी समन्वित रणनीतियाँ लैंगिक समानता, आत्मनिर्भरता और समावेशी विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

मुख्य शब्द: चुनौतियों, सशक्तिकरण, जनजातीय समुदाय, लैंगिक असमानता

प्रस्तावना

आधुनिक भारत में विकास, वैश्वीकरण, शिक्षा तथा सामाजिक सुधारों के विस्तार के बावजूद आदिवासी महिलाओं के बीच लैंगिक असमानता एक गंभीर सामाजिक समस्या बनी हुई है। यद्यपि अनेक आदिवासी समुदायों में महिलाओं की आर्थिक एवं सामुदायिक भागीदारी महत्वपूर्ण है, फिर भी उन्हें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्रों में पूर्ण समानता प्राप्त नहीं है। पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाएँ, पारंपरिक मान्यताएँ, श्रम का लैंगिक विभाजन, गरीबी, अशिक्षा तथा सीमित संस्थागत अवसर महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करते हैं। आदिवासी महिलाएँ कृषि,

वन संसाधनों के संग्रह, घरेलू कार्य, पशुपालन तथा बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, लेकिन उनके श्रम को अपेक्षित सामाजिक एवं आर्थिक मान्यता हमेशा प्राप्त नहीं होती।

लैंगिक असमानता और पितृसत्तात्मक संरचना

लैंगिक असमानता केवल जैविक भिन्नताओं का परिणाम नहीं है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित असमानताओं से भी संबंधित है। परिवार और समुदाय में महिलाओं तथा पुरुषों के लिए निर्धारित भूमिकाएँ उनके अधिकारों, अवसरों और निर्णय-निर्माण की क्षमता को प्रभावित करती हैं। नारीवादी दृष्टिकोण के अनुसार पितृसत्ता लैंगिक असमानता को बनाए रखने वाली प्रमुख सामाजिक संरचनाओं में से एक है। श्रम का लैंगिक विभाजन, पितृवंशीय व्यवस्था, सार्वजनिक-निजी क्षेत्र का विभाजन तथा महिलाओं के श्रम और प्रजनन पर नियंत्रण इसके प्रमुख आयाम हैं। परिणामस्वरूप महिलाएँ घरेलू और आर्थिक दोनों प्रकार के कार्यों में योगदान देने के बावजूद संसाधनों तथा निर्णयों पर सीमित नियंत्रण रख सकती हैं।

आदिवासी महिलाओं की स्थिति

आदिवासी महिलाओं की स्थिति को केवल उनकी आर्थिक भागीदारी के आधार पर समझना पर्याप्त नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, रोजगार, संपत्ति अधिकार, सामाजिक सुरक्षा तथा निर्णय-निर्माण में उनकी भागीदारी भी महत्वपूर्ण है। गरीबी, भौगोलिक दुर्गमता, बुनियादी सुविधाओं की कमी तथा सरकारी योजनाओं की सीमित जानकारी उनके विकास के अवसरों को प्रभावित करती है। कई परिस्थितियों में बालिकाएँ कम उम्र से ही घरेलू और कृषि कार्यों में सहयोग करने लगती हैं, जिसके कारण उनकी शिक्षा और व्यक्तिगत विकास प्रभावित हो सकता है। इस प्रकार श्रम का लैंगिक विभाजन सामाजिक असमानता के साथ-साथ शैक्षिक अवसरों को भी प्रभावित करता है।

परजा जनजाति के संदर्भ में लैंगिक असमानता

ओडिशा की परजा जनजाति इस संदर्भ में अध्ययन का महत्वपूर्ण क्षेत्र प्रस्तुत करती है। परजा समुदाय मुख्यतः कोरापुट क्षेत्र में निवास करता है तथा इसकी आजीविका कृषि, वन संसाधनों के संग्रह, पशुपालन और अन्य स्थानीय गतिविधियों पर आधारित रही है। समुदाय की महिलाओं की भूमिका परिवार की आजीविका में महत्वपूर्ण है, किंतु पारंपरिक लैंगिक भूमिकाएँ उनके अवसरों और सामाजिक स्थिति को प्रभावित करती हैं। महिलाएँ कृषि कार्यों के साथ-साथ खाना पकाने, पानी लाने, सफाई करने, बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल जैसी घरेलू जिम्मेदारियाँ भी निभाती हैं। इस प्रकार वे उत्पादन और पुनरुत्पादन दोनों क्षेत्रों में सक्रिय रहती हैं।

निर्णय-निर्माण और सशक्तिकरण

परिवार के आर्थिक निर्णयों, विवाह, बच्चों की शिक्षा तथा संपत्ति से संबंधित मामलों में महिलाओं की भागीदारी कई परिस्थितियों में सीमित रहती है। स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा और सरकारी योजनाओं तक अपर्याप्त पहुँच भी उनकी स्थिति को प्रभावित करती है। हालाँकि शिक्षा के विस्तार, स्वयं सहायता समूहों, सरकारी योजनाओं और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से सकारात्मक परिवर्तन की संभावनाएँ बढ़ी हैं। अतः आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं की सुलभता, कौशल विकास, रोजगार के अवसर, संपत्ति अधिकार, वित्तीय समावेशन और सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा देना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं संदर्भों में आदिवासी महिलाओं के बीच लैंगिक असमानता की प्रकृति, प्रमुख चुनौतियों तथा सशक्तिकरण की संभावनाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

साहित्य समीक्षा

घोष और चौधरी (2011) ने पारंपरिक मान्यताओं और सांस्कृतिक वर्जनाओं के कारण आदिवासी महिलाओं को होने वाले हाशिए पर धकेले जाने और भेदभाव पर चर्चा की। इस अध्ययन ने उजागर किया कि कई आदिवासी समुदायों में, महिलाओं को हल चलाने या कुछ खास कृषि गतिविधियों में हिस्सा लेने से रोका जाता है, जिससे कृषि और ज़मीन के उपयोग से जुड़े फ़ैसले लेने में उनकी भूमिका सीमित हो जाती है। ये वर्जनाएँ महिलाओं की काम में भागीदारी की दर और आर्थिक स्वतंत्रता पर बुरा असर डालती हैं। लेखकों ने आगे यह भी बताया कि कृषि और घरेलू काम में उनके महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद, आदिवासी महिलाओं को अक्सर पहचान नहीं मिलती और उन्हें कम महत्व दिया जाता है। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह था कि ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं को खत्म करना और कृषि पद्धतियों में लैंगिक समानता को बढ़ावा देना आदिवासी महिलाओं को सशक्त बनाने और लैंगिक असमानता को कम करने के लिए ज़रूरी है।

मोहपात्रा (2013) ने सामाजिक व्यवस्था को लैंगिक भेदभाव का प्राथमिक स्रोत बताया और इस बात पर ज़ोर दिया कि पितृसत्तात्मक संरचनाएँ सामाजिक मानदंडों और मूल्यों को गहराई से प्रभावित करती हैं। अध्ययन में तर्क दिया गया कि पितृसत्ता न केवल सामाजिक संस्थाओं को आकार देती है, बल्कि भाषा, संचार के तरीकों और रोज़मर्रा की बातचीत को भी प्रभावित करती है, जो बदले में लैंगिक पूर्वाग्रह और असमानता को बढ़ावा देती है। मोहपात्रा ने बताया कि भाषा स्वयं अक्सर पुरुष प्रधानता को दर्शाती है, जहाँ मर्दाना शब्दों को सार्वभौमिक माना जाता है और स्त्री पहचान को हाशिए पर धकेल दिया जाता है या रूढ़िबद्ध कर दिया जाता है। इस तरह की भाषाई प्रथाएँ सूक्ष्म रूप से असमान लैंगिक

भूमिकाओं और अपेक्षाओं को कायम रखती हैं। अध्ययन में आगे बताया गया कि पितृसत्तात्मक समाजीकरण बचपन से ही शुरू हो जाता है, जहां लड़कों और लड़कियों को अलग-अलग अपेक्षाओं और जिम्मेदारियों के साथ पाला जाता है। ये सामाजिक मानदंड शिक्षा, रोजगार और निर्णय लेने में असमान अवसरों में योगदान करते हैं, जिससे समाज में, यहां तक कि आदिवासी समुदायों में भी, लैंगिक असमानता बनी रहती है।

थॉमस (2013) ने इस बात पर ज़ोर दिया कि लैंगिक असमानता की जड़ें समाज में लंबे समय से चले आ रहे पुरुष प्रधानता में निहित हैं। अध्ययन में बताया गया कि पितृसत्तात्मक मूल्यों ने ऐतिहासिक रूप से सामाजिक संरचनाओं को आकार दिया है और समकालीन समाज को प्रभावित करना जारी रखा है। थॉमस ने यह भी पाया कि हिंदू पौराणिक कथाओं की व्याख्याओं सहित सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराएं अक्सर महिलाओं के लिए आदर्श भूमिकाएं निर्धारित करती हैं, जैसे कि आज्ञाकारी पुत्री, समर्पित पत्नियां और पालन-पोषण करने वाली माताएं। ये निर्धारित भूमिकाएं महिलाओं की स्वायत्तता को सीमित करती हैं और सार्वजनिक जीवन में उनकी भागीदारी को प्रतिबंधित करती हैं। इसके अलावा, धर्म और परंपराएं कभी-कभी भेदभावपूर्ण प्रथाओं को बढ़ावा देती हैं और महिलाओं के खिलाफ हिंसा या असमान व्यवहार को उचित ठहराती हैं। अध्ययन में लैंगिक असमानता के कई प्रमुख कारणों की पहचान की गई, जिनमें पुरुष उत्तराधिकारियों को प्राथमिकता, गरीबी, खराब स्वास्थ्य सुविधाएं, शिक्षा के अवसरों की कमी, आर्थिक दबाव, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और असमान समाजीकरण प्रक्रियाएं शामिल हैं। बाल विवाह और महिलाओं की गतिशीलता पर प्रतिबंध जैसी हानिकारक सांस्कृतिक प्रथाओं को भी योगदान देने वाले कारकों के रूप में उजागर किया गया। अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला कि लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए इन संरचनात्मक और सांस्कृतिक बाधाओं को दूर करना आवश्यक है।

रथ (2014) ने स्पष्ट किया कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच का अंतर लैंगिक असमानता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस अध्ययन में तर्क दिया गया कि पुरुषत्व परंपरागत रूप से सार्वजनिक क्षेत्र से जुड़ा है, जिसमें रोजगार, राजनीति और निर्णय लेने की भूमिकाएं शामिल हैं, जबकि नारीत्व निजी क्षेत्र से जुड़ा है, जिसमें मुख्य रूप से घरेलू जिम्मेदारियाँ और देखभाल की भूमिकाएं शामिल हैं। रथ ने बताया कि पुरुषों को सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जबकि महिलाओं को अक्सर घरेलू दायरे तक सीमित रखा जाता है और उनसे अवैतनिक घरेलू श्रम करने की अपेक्षा की जाती है। भूमिकाओं का यह असमान बँटवारा महिलाओं की आर्थिक संसाधनों, शिक्षा और निर्णय लेने की शक्ति तक पहुँच को सीमित करता है। इसके अलावा, निजी दायरे में महिलाओं को अक्सर पुरुषों के अधिकार के अधीन रहना पड़ता है, जिससे लैंगिक

पदानुक्रम और मज़बूत होता है। अध्ययन में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि सार्वजनिक और निजी दायरों के बीच की इस कठोर विभाजन रेखा को तोड़ना लैंगिक असमानता को कम करने और महिलाओं के सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

रॉय और मधु (2014) ने उन कारकों पर प्रकाश डाला जो आदिवासी महिलाओं के बीच कम महिला साक्षरता दर और शैक्षिक असमानता में योगदान करते हैं। अध्ययन में बताया गया कि अत्यधिक गरीबी, मजदूरी के लिए काम करने की मजबूरी और कम उम्र में शादी लड़कियों की शिक्षा में काफी बाधा डालते हैं। इसके अलावा, दूरदराज के आदिवासी गांवों में स्कूलों की कमी और परिवहन सुविधाओं का अभाव लड़कियों को स्कूल जाने से हतोत्साहित करता है। अध्ययन में पहचानी गई एक और बड़ी बाधा शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा का अभाव था, जिससे आदिवासी बच्चों, विशेष रूप से लड़कियों के लिए सीखने में कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया कि घरों के भीतर कम वयस्क साक्षरता दर शैक्षिक जागरूकता की कमी और लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रेरणा की कमी में योगदान करती है। परिणामस्वरूप, आदिवासी क्षेत्रों में महिला साक्षरता दर कम बनी रहती है। लेखकों ने शैक्षिक बुनियादी ढांचे में सुधार करने, मातृभाषा-आधारित शिक्षा को बढ़ावा देने और आदिवासी समुदायों के बीच महिला साक्षरता बढ़ाने तथा लैंगिक असमानता को कम करने के लिए माता-पिता के बीच जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया।

समदर्शनी (2017) ने पाया कि कम उम्र में शादी, दो गर्भधारण के बीच कम अंतराल, प्रसव के लिए आदिम और अस्वच्छ प्रथाएँ, एनीमिया, प्रसवकालीन रक्तस्राव, सेप्टिक गर्भपात, गर्भाशय का फटना, उच्च जन्म दर, गर्भावस्था के दौरान आयरन, विटामिन और कैल्शियम का कम सेवन, शराब का सेवन, कठोर शारीरिक श्रम आदि आदिवासी महिलाओं की मृत्यु दर के मुख्य कारण हैं।

चुनौतियाँ

आधुनिक भारत में आदिवासी महिलाओं के बीच लैंगिक असमानता एक बहुआयामी समस्या है, जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक और संस्थागत परिस्थितियों से जुड़ी हुई है। आदिवासी महिलाएँ परिवार और समुदाय की आजीविका में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, फिर भी उनके श्रम, अधिकारों और निर्णय-क्षमता को अपेक्षित मान्यता प्राप्त नहीं होती। सबसे प्रमुख चुनौती पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना है, जिसके कारण परिवार और समुदाय में महत्वपूर्ण निर्णय लेने की शक्ति प्रायः पुरुषों के पास केंद्रित रहती है। विवाह, संपत्ति, बच्चों की शिक्षा, रोजगार और आर्थिक संसाधनों से संबंधित निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी कई परिस्थितियों में सीमित रहती है।

परंपरागत लैंगिक भूमिकाएँ भी महिलाओं की स्वतंत्रता और सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करती हैं।

शिक्षा की कमी आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण में एक महत्वपूर्ण बाधा है। गरीबी, विद्यालयों की दूरी, परिवहन की कमी, घरेलू जिम्मेदारियाँ तथा परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं के कारण बालिकाओं की शिक्षा बाधित हो सकती है। कई लड़कियाँ कम उम्र से ही घर के काम, छोटे भाई-बहनों की देखभाल तथा कृषि गतिविधियों में परिवार की सहायता करने लगती हैं। इसके परिणामस्वरूप उनकी विद्यालयी उपस्थिति और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रभावित होते हैं। शिक्षा की कमी आगे चलकर रोजगार, आय और स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता को भी सीमित कर सकती है।

आर्थिक असमानता भी आदिवासी महिलाओं के सामने एक प्रमुख चुनौती है। महिलाएँ कृषि, वन उत्पाद संग्रह, पशुपालन, मजदूरी और घरेलू उत्पादन जैसी गतिविधियों में व्यापक रूप से भाग लेती हैं, लेकिन उनके कार्य का बड़ा हिस्सा अनौपचारिक अथवा अवैतनिक होता है। आय अर्जित करने वाली महिलाओं को भी कई बार अपनी आय पर स्वतंत्र नियंत्रण नहीं होता। भूमि, संपत्ति, ऋण, बैंकिंग सेवाओं और उत्पादक संसाधनों तक सीमित पहुँच उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, महिलाओं पर घरेलू कार्य और आर्थिक गतिविधियों का दोहरा बोझ उनके समय तथा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

स्वास्थ्य और पोषण संबंधी चुनौतियाँ भी गंभीर हैं। भौगोलिक दुर्गमता, स्वास्थ्य संस्थानों की सीमित उपलब्धता, आर्थिक कठिनाइयाँ तथा स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता की कमी के कारण अनेक आदिवासी महिलाएँ आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं तक समय पर नहीं पहुँच पातीं। मातृ स्वास्थ्य, प्रजनन स्वास्थ्य, पोषण और स्वच्छता से संबंधित आवश्यकताओं की उपेक्षा उनके समग्र विकास को प्रभावित कर सकती है। लंबे समय तक कृषि और घरेलू श्रम करने से शारीरिक कार्यभार भी बढ़ता है।

इसके अतिरिक्त, सरकारी योजनाओं और संस्थागत सुविधाओं तक सीमित पहुँच एक महत्वपूर्ण चुनौती है। अनेक महिलाओं को उपलब्ध योजनाओं, छात्रवृत्तियों, स्वास्थ्य सुविधाओं, रोजगार कार्यक्रमों और वित्तीय सहायता के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती। प्रशासनिक प्रक्रियाओं, दस्तावेजी आवश्यकताओं, भौगोलिक दूरी और डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण योजनाओं का लाभ प्राप्त करना कठिन हो सकता है। सामाजिक जागरूकता और राजनीतिक भागीदारी की कमी भी महिलाओं की आवाज़ को सीमित करती है। अतः आदिवासी महिलाओं की लैंगिक असमानता को कम करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर, संपत्ति अधिकार, कौशल विकास, डिजिटल एवं वित्तीय साक्षरता तथा निर्णय-निर्माण में उनकी भागीदारी को एक साथ बढ़ाना आवश्यक है।

सशक्तिकरण

आधुनिक भारत में आदिवासी महिलाओं का सशक्तिकरण लैंगिक असमानता को कम करने और उन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक रूप से सक्षम बनाने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। आदिवासी महिलाओं का जीवन लंबे समय से गरीबी, अशिक्षा, सीमित संसाधनों, स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, रोजगार के अस्थिर अवसरों तथा सामाजिक व लैंगिक भेदभाव जैसी अनेक चुनौतियों से प्रभावित रहा है। इसके बावजूद आदिवासी महिलाएँ कृषि, वनोपज संग्रह, हस्तशिल्प, घरेलू कार्य, पशुपालन और स्थानीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। सशक्तिकरण का उद्देश्य केवल महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना नहीं है, बल्कि उन्हें अपने जीवन से जुड़े निर्णय लेने, संसाधनों पर अधिकार प्राप्त करने और सामाजिक संस्थाओं में प्रभावी भागीदारी करने की क्षमता प्रदान करना भी है। शिक्षा आदिवासी महिला सशक्तिकरण का सबसे प्रभावशाली माध्यम है। प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक उनकी पहुँच बढ़ने से उनमें जागरूकता, आत्मविश्वास और रोजगार की संभावनाएँ विकसित होती हैं। शिक्षा महिलाओं को अपने कानूनी अधिकारों, सरकारी योजनाओं, स्वास्थ्य सुविधाओं और सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों के प्रति जागरूक बनाने में भी सहायक होती है। विशेष रूप से व्यावसायिक एवं कौशल-आधारित शिक्षा उन्हें स्थानीय संसाधनों के आधार पर स्वरोजगार और उद्यमिता के अवसर प्रदान कर सकती है। आर्थिक सशक्तिकरण भी लैंगिक असमानता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्वयं सहायता समूहों, सूक्ष्म वित्त, कौशल प्रशिक्षण, लघु उद्यम, कृषि-आधारित गतिविधियों तथा वन उत्पादों के मूल्यवर्धन के माध्यम से आदिवासी महिलाएँ अपनी आय बढ़ा सकती हैं। जब महिलाओं की आय और आर्थिक निर्णयों में भागीदारी बढ़ती है, तो परिवार और समुदाय में उनकी स्थिति अधिक मजबूत हो सकती है। इसी प्रकार, भूमि, वन संसाधनों और संपत्ति पर महिलाओं के अधिकार उनकी आर्थिक सुरक्षा को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण हैं।

राजनीतिक और सामाजिक सशक्तिकरण के माध्यम से आदिवासी महिलाओं को ग्राम पंचायतों, स्थानीय स्वशासन संस्थाओं तथा सामुदायिक संगठनों में भागीदारी के अवसर मिलते हैं। निर्णय-निर्माण में उनकी सक्रिय उपस्थिति शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका, पेयजल, स्वच्छता और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों को अधिक प्रभावी ढंग से सामने ला सकती है। हालांकि केवल प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है; निर्वाचित महिलाओं को प्रशिक्षण, जानकारी और स्वतंत्र निर्णय लेने के लिए आवश्यक संस्थागत सहयोग भी मिलना चाहिए। डिजिटल तकनीक भी आधुनिक समय में सशक्तिकरण का एक उभरता हुआ माध्यम है। मोबाइल फोन, इंटरनेट और डिजिटल सेवाओं तक पहुँच आदिवासी महिलाओं को शिक्षा, बाजार, बैंकिंग, सरकारी योजनाओं और रोजगार संबंधी सूचनाओं से जोड़

सकती है। इसके साथ डिजिटल साक्षरता और सुरक्षित डिजिटल वातावरण सुनिश्चित करना आवश्यक है। स्वास्थ्य और पोषण संबंधी सुविधाओं तक समान पहुँच भी महिला सशक्तिकरण का अभिन्न हिस्सा है, क्योंकि स्वस्थ महिला ही शिक्षा, रोजगार और सामाजिक गतिविधियों में प्रभावी भागीदारी कर सकती है। अतः आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए शिक्षा, आर्थिक अवसर, स्वास्थ्य, संपत्ति अधिकार, राजनीतिक भागीदारी, डिजिटल समावेशन और सामाजिक जागरूकता को एकीकृत रूप से विकसित करना आवश्यक है। इस प्रकार सशक्तिकरण केवल महिलाओं की व्यक्तिगत स्थिति में सुधार नहीं करता, बल्कि परिवार, समुदाय और व्यापक समाज के समावेशी विकास की आधारभूमि तैयार करता है।

जनजातीय समुदाय और लैंगिक असमानता: एक वैचारिक समझ

यह अध्याय भारत में जनजातीय समुदायों और लैंगिक असमानता की मूलभूत समझ प्रदान करने का उद्देश्य रखता है। इस अध्याय में जनजातीय समुदायों की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है तथा यह बताया गया है कि ये कारक किस प्रकार विशेष रूप से जनजातीय महिलाओं के बीच लैंगिक असमानता को बढ़ावा देते हैं। जनजातीय महिलाएँ जनजातीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, फिर भी वे अनेक समस्याओं का सामना करती हैं, जैसे गरीबी, अशिक्षा, खराब स्वास्थ्य स्थिति, संसाधनों तक सीमित पहुँच तथा निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में सीमित भागीदारी। इस अध्याय में लैंगिक असमानता की अवधारणा और प्रकृति पर भी चर्चा की गई है तथा इसके लिए उत्तरदायी विभिन्न कारकों जैसे पितृसत्ता, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाएँ, आर्थिक निर्भरता तथा शिक्षा की कमी को स्पष्ट किया गया है। ये सभी कारक जनजातीय महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। आधुनिक भारत में जनजातीय महिलाओं की स्थिति के विश्लेषण के लिए इन मुद्दों को समझना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, इस अध्याय में लैंगिक असमानता को कम करने और महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर उठाए गए विभिन्न प्रयासों पर भी प्रकाश डाला गया है। इन पहलों का उद्देश्य विशेष रूप से जनजातीय महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के अवसरों तथा समग्र जीवन स्तर में सुधार करना है। इस प्रकार, यह अध्याय जनजातीय समुदाय और लैंगिक असमानता की वैचारिक समझ प्रदान करता है, जो वर्तमान अध्ययन के लिए आधार तैयार करता है।

भारत में जनजातीय समुदाय: एक समझ

भारत विभिन्न नस्लों, धर्मों और संस्कृतियों का बहुलतावादी देश है, जहाँ अनेक समूह और समुदाय देश के विभिन्न भागों में निवास करते हैं। आज भी कई जनजातीय समूह आदिम अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इन्हें अनुसूचित जनजाति कहा जाता है तथा इन्हें स्वदेशी लोग, आदिवासी, अनुसूचित जनजाति, वनवासी, आदिम जाति और वंचित वर्ग जैसे नामों से भी जाना जाता है। जनजातियों को सबसे प्राचीन बसने वाले समुदाय माना जाता है और सामान्य रूप से उन्हें आदिवासी कहा जाता है। जनजातीय समुदाय अत्यंत पिछड़े, गरीब और हाशिए पर स्थित समूह हैं। वे सामान्यतः मुख्यधारा के समाज से दूर क्षेत्रों में निवास करते हैं और जंगल तथा वन संसाधनों से उनका घनिष्ठ संबंध होता है। अनुसूचित जनजातियों को उनके भौगोलिक अलगाव, कमजोर सामाजिक-आर्थिक स्थिति, विशिष्ट भाषा तथा अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान के कारण स्वदेशी समुदायों के रूप में जाना जाता है। यद्यपि जनजातियों के विकास के लिए कई कार्यक्रम चलाए गए हैं, फिर भी वे मुख्यधारा के समाज से अलग-थलग रहते हैं। उनकी विशिष्ट संस्कृति, जो गैर-जनजातीय समुदायों से भिन्न है, के कारण बाहरी दुनिया के साथ उनका संपर्क अन्य समुदायों की तुलना में कम रहा है। प्रारंभ से ही जनजातीय समूह अशिक्षा, रूढ़िवादिता तथा उनके पृथक निवास के कारण सामान्य विकास प्रक्रिया से पीछे रह गए। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने संविधान में जनजातियों को अनुसूचित किया तथा उनके सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए विशेष प्रावधान किए।

लैंगिक असमानता : एक वैचारिक समझ

इस खंड में "लैंगिक असमानता : एक वैचारिक समझ" के अंतर्गत लिंग एवं जैविक लिंग की अवधारणा, अर्थ, परिभाषा, विशेषताएँ, प्रकार तथा लैंगिक असमानता के निर्धारकों का अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही समाजीकरण की प्रक्रिया में लैंगिक असमानता, लैंगिक समाजीकरण के अभिकरण तथा जनजातीय समाज में लैंगिक असमानता पर भी चर्चा की गई है।

लैंगिक असमानता को कम करने हेतु अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय पहल

वर्तमान समय में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में लैंगिक असमानता विद्यमान है। यह प्रथा केवल भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में पाई जाती है। समकालीन समाज में लैंगिक असमानता एक गंभीर चुनौती बन गई है। इसलिए पुरुषों और महिलाओं के बीच अंतर को कम करने के लिए विभिन्न स्तरों पर अनेक पहल की गई हैं। इस अध्याय के इस भाग में लैंगिक असमानता को कम करने के लिए अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर किए गए प्रयासों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष

जनजातीय समाज में लैंगिक संबंध मुख्यधारा के समाज से कई स्तरों पर भिन्न रहे हैं। पारंपरिक 'पाराजा' जनजातीय समाज में पुरुषों और महिलाओं को अपेक्षाकृत स्वायत्तता तथा समान सामाजिक दर्जा प्राप्त था। यद्यपि सांस्कृतिक रूप से निर्धारित श्रम-विभाजन और पारिवारिक निर्णयों में कुछ अंतर मौजूद थे, फिर भी महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक भूमिका महत्वपूर्ण थी। किंतु आधुनिक विकास, शहरीकरण, औद्योगीकरण और गैर-जनजातीय समुदायों के साथ बढ़ते सांस्कृतिक संपर्क के कारण पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आने लगा है। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक समानतावादी विशेषताओं में कमी और लैंगिक असमानता के नए रूप दिखाई देने लगे हैं।

'पाराजा' समुदाय में शिक्षा लैंगिक असमानता का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बनकर उभरी है। सर्व शिक्षा अभियान के बाद साक्षरता में सुधार दिखाई देता है, लेकिन पुरुषों की तुलना में महिलाओं का विद्यालयी नामांकन अभी भी अपेक्षाकृत कम रहा है। पुरुषों की शिक्षा में आर्थिक कठिनाइयाँ प्रमुख बाधा हैं, जबकि महिलाओं के लिए आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ माता-पिता की अरुचि और घरेलू जिम्मेदारियाँ भी शिक्षा में बाधक बनती हैं। कई परिवारों में बेटियों की शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दी जाती, क्योंकि यह धारणा बनी हुई है कि महिलाओं का मुख्य दायित्व घरेलू कार्य और कृषि गतिविधियों तक सीमित है तथा परिवार की आर्थिक सुरक्षा के लिए पुरुषों का शिक्षित और रोजगार प्राप्त होना अधिक आवश्यक है।

आर्थिक क्षेत्र में भी असमानता स्पष्ट दिखाई देती है। पाराजा महिलाएँ कृषि, घरेलू कार्य और अन्य पारिवारिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, लेकिन उनके श्रम को प्रायः स्वतंत्र आर्थिक गतिविधि के रूप में मान्यता नहीं मिलती। अपनी भूमि पर कृषि कार्य करने के बावजूद उनकी व्यक्तिगत आय निर्धारित नहीं होती और उनकी कमाई को परिवार की सामूहिक आय का हिस्सा माना जाता है। परिणामस्वरूप महिलाओं के श्रम का आर्थिक मूल्यांकन और सामाजिक पहचान सीमित रह जाती है। इस प्रकार शिक्षा, रोजगार, आय और श्रम की मान्यता के क्षेत्रों में विद्यमान असमानताएँ पाराजा महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण को प्रभावित करती हैं।

संदर्भ सूची

1. निशा, आर. एवं आसोखान, एम. (2015). आजीविका विकास के माध्यम से जनजातीय महिलाओं का सशक्तिकरण. मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान पत्रिका, 20(8), 6-10.

2. परे, एम. आर. (2019). भारत में जनजातीय महिलाओं का सशक्तिकरण एवं लैंगिक विकास. अंतरराष्ट्रीय बहुविषयक वैज्ञानिक शोध पत्रिका, 2(1), 21–27.
3. सेठुरमन, के., लैंसडाउन, आर. एवं सुलिवन, के. ए. (2006). महिलाओं का सशक्तिकरण और घरेलू हिंसा: दक्षिण भारत की जनजातीय और ग्रामीण समुदायों में मातृ एवं बाल कुपोषण में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की भूमिका. खाद्य एवं पोषण बुलेटिन, 27(2), 128–143.
4. सिन्हा, एस. (2021, 10 अक्टूबर). भारत के परिवर्तन में जनजातीय महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका. हिंदुस्तान टाइम्स.
5. सोनी, ए. (2019). मध्य भारतीय जनजातीय महिलाओं की स्थिति और सशक्तिकरण. भारतीय मानवशास्त्र शोध पत्रिका, 5(1), 5–9.
6. सोन्नद, एस. एवं संगन, एस. (2014). भारत में जनजातीय महिलाओं का सशक्तिकरण. भारतीय शोध पत्रिका, 4(5), 1–6.
7. धल, एस. (2018). ओडिशा में जातीय महिलाओं को जेंडर बहस में स्थानित करना: जेंडर हिंसा की सामाजिक-आर्थिक जड़ों का अध्ययन। भारतीय सार्वजनिक प्रशासन जर्नल, 64(1), 87-1021
8. भासिन, वी. (2007). भारत में जातीय महिलाओं की स्थिति। गृह और समुदाय विज्ञान अध्ययन, 1(1), 1-161

9. डीयर, एस. (2018). आदिवासी लोग और हिंसक अपराध: जेंडरीकृत हिंसा और जनजातीय प्रभाव का अध्ययन। ड्यू ब्वा रिव्यू: रेस पर सामाजिक विज्ञान अनुसंधान, 15(1), 89-1061
10. रामिरेज, आर. (2007). जातिगत राष्ट्र और जेंडर: एक नेटिव फेमिनिस्ट पहुंच से संबंधित। मेरिडियन्स, 7(2), 22-401
11. नायक, के. वी., & आलम, एस. जेंडर संबंधित हिंसा की पुनरावलोकन: भारतीय आदिवासी समुदायों में। स्थायी विकास पर अन्यविज्ञानी परिप्रेक्ष्य (पृ. 257-261)। सीआरसी प्रेस।
12. मन्ना, ए. (2024). आदिवासी महिलाओं में सशक्तिकरण और जेंडर समानता। कला और मानविकी में अनुसंधान के लिए एकीकृत जर्नल, 4(1), 11-171
13. खान, एस., & हसन, जेड. (2020). भारतीय आदिवासी महिलाएं: जेंडर असमानताएँ और उसके प्रतिक्रियाएँ।
14. सिंधी, एस. (2012). आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण में संभावनाएँ और चुनौतियाँ। आईओएसआर मानविकी और सामाजिक विज्ञान जर्नल, 6(1), 46-541
15. सरीन, एम., & गोपालकृष्णन, एस. (2022). अनुसूचित जनजातियों में जेंडर मुद्दे, जेंडर-आधारित हिंसा सहित। आदिवासी विकास रिपोर्ट (पृ. 11-55)। राउटलेज इंडिया।